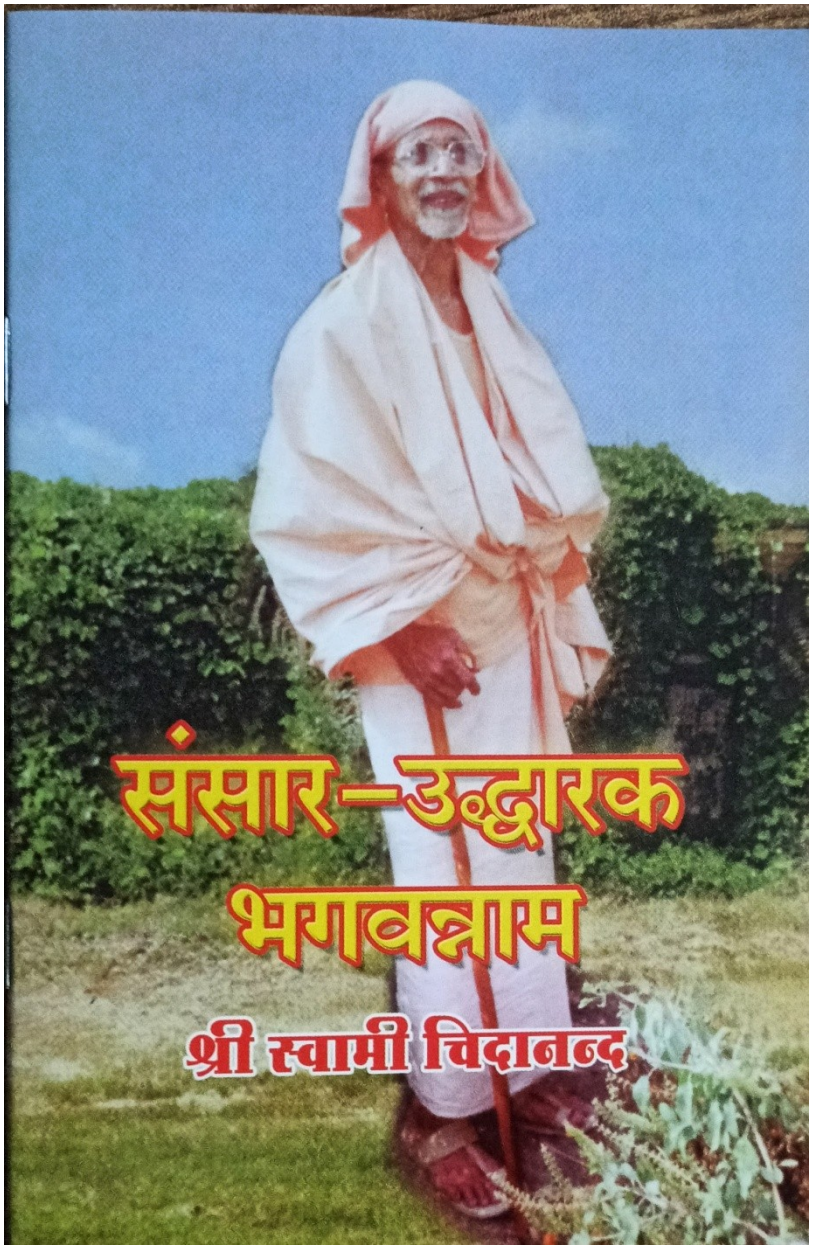
संसार-उद्धारक
भगवन्नाम
श्री स्वामी चिदानन्द

संसार-उद्धारक भगवन्नाम

श्री स्वामी चिदानन्द

MEDITATE SERVE LOVE REALIZE
THE DIVINE LIFE SOCIETY

प्रकाशक
द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९१९२
जिला: टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१९
(२,००० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर-२४९१९२,
जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

विषय-सूची

१.संसार-उद्धारक भगवन्नाम.....4
२.दिव्यत्व की प्राप्ति.....13
३. आत्मज्ञान की साधना.....17

१.संसार-उद्धारक भगवन्नाम

प्रिय साधक-वृन्द! दिव्य नाम-महिमा अपरम्पार है। सब शास्त्र, सन्त और ग्रन्थ नाम-महिमा का दिव्य गान करते हैं। नाम-स्मरण, नाम-संकीर्तन जितने महान् हैं, उतने ही उपकारी, परहितकारी एवं आशीर्वादरूप हैं। नश्वर

नाम-रूपों, मिथ्या आकृतियों के इस संसार में एक ही बात, एक ही वस्तु और एक ही तत्त्व सत्य है और वह है भगवान् का दिव्य नाम। शेष सब पदार्थ अस्थायी, झूठे और नाशवान हैं।

दिव्य नाम-महिमा किस कारण श्रेष्ठ है? सन्त तुकाराम कहते हैं कि हैं कि प्रतिपल ईश्वर का नाम जपो -उठते, बैठते, खड़े रहते, चलते-चलते, घर में, घर से बाहर, आते, जाते, खाते, पीते सदा नाम-स्मरण करो। नाम-जप इसलिये श्रेष्ठ है कि वह संसार के सब बन्धनों से मुक्त करता है। हम जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होते हैं। नाम-जपने में जन्म-जन्मांतर के पापों को जलाकर भस्मीभूत करने की शक्ति है। नाम-संकीर्तन करने वाले को भगवत्-स्मरण के लिये संघर्ष और परिश्रम नहीं करना पड़ता। एक भजन में सुन्दर पंक्तियाँ हैं :

"पाप कटे दुःख मिटे, लेत राम-नाम
भवसमुद्र सुखद नाव एक राम-नाम ।।
माता-पिता बन्धु, सखा सब ही राम-नाम
भक्त जनन जीवन-धन एक राम-नाम।।"

भगवन्नाम इस भयानक संसार-सागर को पार करने के लिए एक सुखद नाव है। भगवन्नाम की महिमा सब धर्मों के सन्त-महात्मा, सब शास्त्र-ग्रन्थ एवं पुराण गाते हैं। जप भक्तियोग का प्रधान अंग है। जप की महिमा अपार इसलिये है कि अन्य योग, जैसे-ज्ञान, राज, कर्म आदि में-कौशल्य, निपुणता प्राप्त करने के लिये अधिक समय देना पड़ता है, अधिक नियमों और परिस्थितियों पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

उदाहरणार्थ, ज्ञानयोग के साधक को प्रथम चार साधनों से सज्जित होना पड़ता है। वे चार साधन हैं-विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत् और मुमुक्षुत्व। प्रथम साधन, विवेक में नित्य-अनित्य, आत्म-अनात्म का विवेक कर अनित्य-अनात्म वस्तु-पदार्थों का त्याग करना है। दूसरे साधन, वैराग्य में संसार के नाशवान पदार्थों में रुचि का त्याग करना होता है। इसका तृतीय साधन है- 'षट्-सम्पत्', इसमें शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान समाविष्ट हैं। 'शम' का अर्थ है मन को वश में करना। मन और इंद्रियों की पूर्णतया स्थिरता प्राप्त करनी। यदि इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं है तो मन अशान्त रहेगा। मन सदैव प्रशान्त रहना चाहिये, फिर चाहे जो भी परिस्थिति हो, मन की शान्ति में परिवर्तन नहीं आना चाहिये। दम की सफलता शम पर आधारित है और शम की सफलता दम पर आधारित। दोनों अन्योन्य परिपूरक हैं। उपरति अर्थात् मन में सन्तोष होना चाहिये। शम दम से जब मन स्थिर होता है, तब संसार के वस्तु-पदार्थों का उपयोग, उपभोग करने की इच्छा नहीं रहती। साधक जानता है कि वे सब वस्तुएँ केवल मूल्यहीन, असार, अर्थहीन ही नहीं हैं, अपितु वे दुःख का कारण, पीड़ादायक भी हैं। मानव समझता है कि वे सुखद हैं, आकर्षक हैं, परन्तु वे ही चीज़-वस्तुएँ इच्छाओं को बढ़ाती हैं, मानव के मन को कष्ट, सन्ताप देती हैं। जैसे ही मनुष्य इच्छाओं को तृप्त करता है, वे उतनी ही अधिक तीव्र, उत्कट होती हैं। उनकी तृप्ति से ज्यादा अशान्ति उत्पन्न होती है। यह एक श्रृंखला है, एक ऐसा विषचक्र है जो कदापि समाप्त नहीं होता।

यह सब समझकर इस सत्य का चिंतन कर, साधक का मन प्रशान्ति का अनुभव करता है। इन्द्रियों सम्बंधी किसी भी उत्तेजक परिस्थिति अथवा वस्तु को वह अस्वीकार कर देता है। अब उसे अस्वस्थ करने की इन्द्रियों में शक्ति नहीं होती। इन्द्रियां क्रमशः गौण हो जाती हैं, वशीभूत होती हैं। तितिक्षा का अर्थ है सहिष्णुता । शीत-उष्णता के विरोधी अनुभव और राग-द्वेष, सुख-दुःख, जय-पराजय, मान-अपमान तथा हर्ष-शोक के द्वंद्व को सहने का नाम है-तितिक्षा। ज्ञानयोग में षट्सम्पत् में श्रद्धा और समाधान भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं। मुमुक्षुत्व अत्यंत आवश्यक है। कारण, मुमुक्षुत्व के लिये ही मानव साधना करता है।

साधन-चतुष्टय से सम्पन्न होने के पश्चात् ज्ञानयोग का साधक सदुरु के चरण-कमलों में बैठकर शास्त्रों का श्रवण करता है। गुरु ऐसा हो जो पवित्र शास्त्रों में पंडित एवं विद्वान मात्र ही न हो अपितु साथ-साथ ब्रह्मनिष्ठ (अर्थात्

जो ब्रह्म में स्थित हो), भी होना चाहिये। शास्त्रों-उपनिषदों का ज्ञान ग्रहण करने के लिये ज्ञानयोग के साधक को संस्कृत भाषा का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। वेदान्त अध्ययन हेतु व्याकरण, न्याय-शास्त्र, तर्कशास्त्र, वाद-विवाद इत्यादि सब सीखना पड़ता है, जो हर व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं है।

ज्ञानयोग की सात अवस्थाएँ हैं। ये हैं शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसी (मन की सूक्ष्मता), सत्वापत्ति (प्रकाश की प्राप्ति), असंसक्ति (आन्तरिक अनासक्ति), पदार्थ भावना (आध्यात्मिक दर्शन) और सर्वोच्च मुक्ति (तुरीय)। तत्पश्चात्, ज्ञानयोग का साधक मनन करता है। मनन उसकी सब शंकाओं का शमन करता है। फिर वह 'ब्रह्म' पर गहन ध्यान करता है और उसे 'ब्रह्म-साक्षात्कार' होता है। वह जीवन्मुक्त अर्थात् साक्षात्कारी सन्त बनता है। देह में रहकर ही मोक्ष प्राप्त करता है।

साधना आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। अत: अल्पसंख्यक लोग ही ज्ञानयोग की सम्पन्नता के लिये तत्पर होते हैं। राजयोग में भी सफल होने के लिये निरन्तर और दृढ़तापूर्वक, लगन से प्रयास करने पड़ते हैं। इन प्रयासों के लिये आज का साधक तैयार नहीं होता, कारण उसके पास इतना समय नहीं होता, अन्य कर्तव्य भी उसे निभाने पड़ते हैं। इस तरह की परिस्थिति होने से साधक और कभी-कभी सन्त-महात्मा भी भक्तियोग की सरलता के साथ सहमत होते हैं।

भक्तियोग की सरलता को साधक या कोई मानव तब ही समझ सकता है, जब वह इस मार्ग पर चलना स्वीकार करता है। किसी ने कहा है कि भक्तिमार्ग साधक हेतु एक सांत्वना है, अन्यथा योग साधना के लिये साधक इतने उद्यत नहीं होते। भक्तियोग की सरलता इसमें है कि साधक को कड़ा संघर्ष नहीं करना पड़ता। मन और इंद्रियों के साथ युद्ध नहीं करना होता। भक्तिमार्ग तो मधुर है। आदि, मध्य और अन्त में भी मधुर! श्री रामकृष्ण परमहंसदेव जी ने कहा है कि भक्तिमार्ग जलेबी या चमचम जैसा है। ये दोनों मिठाइयाँ शक्कर की चाशनी में डुबोयी जाती हैं। अतः इन्हें किसी भी ओर से खायें, मधुर ही लगती हैं। उसी प्रकार भक्तिमार्ग पूर्णतया मधुर है।

आनन्दाश्रम के पापा रामदास जी ने कहा है-भक्तियोग एक पथ है जिस पर चलकर व्यक्ति ईश्वर की ओर बढ़ने लगता है। भक्त का उठाया हर कदम उसी प्रकार अति आनन्दपूर्ण एवं सुखद होता है, जैसे कि कोई बालक अपने घर पहुँच रहा हो। इतना ही नहीं घर पहुँचकर अपनी माता को पुनः मिलना हो। भक्तिमार्ग पर बढ़ने हेतु हम किसी भी साधन को पसंद करें-जप, कीर्तन, उपासना अथवा भजन। हर एक साधन मधुर होता है। इस प्रकार सन्त-महात्मा, भक्तियोग के हमारे चयन को प्रेरित करते हैं।

भक्तियोग में भी लगन, दृढ़ निश्चय, समय और भगवान् को पाने की तीव्र उत्कंठा अति आवश्यक हैं। मीराबाई कहती हैं, "अँसुवन-जल सींच-सींच प्रेम बेल बोई।" भक्त, विरहाग्नि में तप्त होकर अपने जीवन-समाप्ति पर्यंत भक्ति करता है। कितनी व्यथा का श्री चैतन्य महाप्रभु जी, श्री रामकृष्णदेव परमहंस जी और श्री राधिका जी ने अनुभव किया था ! कितने अश्रु उन्होंने भी बहाये थे ! भक्तिमार्ग के अन्य साधन कठिन, दुष्कर लगते हैं। तथापि, मैंने प्रारम्भ में ही कहा है कि,

"पाप कटे, दुःख मिटे लेत राम-नाम।
भव-समुद्र सुखद नाव एक राम-नाम।।"

भगवान् तुम्हारे सर्वस्व हैं। सारे संसार में वे ही एक सार हैं। एक मराठी अभंग-भक्तिपद में कहा है,

"एक सार नाम, हरि भज हरि,
हरि हरे तेरी चिंता सारी।"

इस संसार में ऐसा कौन सा व्यक्ति है, जो चिंता-मुक्त होना नहीं चाहता। सन्त-महात्मा-ऋषिगण कहते हैं कि भगवन्नाम ही सत्य है। भगवन्नाम का जप ही महानतम योग है, महानतम साधना है। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् स्वयं की पहचान उनके नाम के जप से देते हैं। जब भगवान् अर्जुन को स्व-व्यापकता के विषय में कहते हैं तब अर्जुन को उदाहरण देकर स्पष्टतया समझाने के लिये यह कहते हैं। भगवान् अर्जुन को और हम सबको भी भगवन्नाम के जप का महत्त्व समझाते हैं। सन्त-महात्मा भी जप की महिमा गाते हैं। सब शास्त्र, सब सन्त कहते हैं कि भगवन्नाम ही एकमात्र सत्य है : **'सत्यं सत्यं पुनर्सत्यं हरेर्नामैव केवलम्।'**

जप-साधना इस कारण भी महान् है क्योंकि वर्तमान युग-कलियुग में, वर्तमान परिस्थिति में आध्यात्मिक मार्ग की अन्य कठिन साधनाएँ-जैसे कि ज्ञानयोग, राजयोग, कुण्डलिनीयोग और भक्तियोग भी लक्ष्य-सिद्धि हेतु दुष्कर हैं। वर्तमान युग में क्या इस प्रकार का कोई साधन है जिसमें कोई पूर्व तैयारी, गृह कार्य या समय दान करना न पड़े? जिसकी साधना में अति परिश्रम, अधिक शक्ति का उपयोग न करना पड़े? क्या इस प्रकार की कोई साधना नहीं? हाँ, इस प्रकार की उपलब्ध साधना है, जप-साधना। यह अत्यंत सुगम साधना है। इस साधना में किसी ने भक्तिमार्ग को अन्य दृष्टिकोण से समझाया है। वह कहते हैं, "भक्तिमार्ग पर चलना इस प्रकार का है कि जैसे इधर अशान्ति से भटककर अपने घर पहुँचना है।" अतः अब आप के सम्मुख भेद खुलता है कि 'मेरे सारे दुःखों, सारे कष्टों का कारण है कि मैं अपने माता-पिता और घर से मेरे अपने अज्ञान और असमंजस के कारण बिछड़ गया हूँ और दूर चला गया हूँ, अब मैं अपने घर जा रहा हूँ।' अब हर एक कदम आप उठाते हैं, तब आपका आनन्द उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता है। कारण यह है कि आपको अब अपने माता-पिता के पास पहुँचना है। उदाहरणार्थ, कोई बालक प्रभात में ८ बजे स्कूल में जाता है तो एक लम्बे समय के बाद वह संध्या को ५ बजे को घर पहुँचता हो तो वह कितनी आतुरता से वहाँ पहुँचता है। बालक जानता है कि उसकी माता उसकी उत्कंठा से प्रतीक्षा करती होगी, माता ने उसके लिये दूध, कोई स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थ बनाकर रखे होंगे।

और भक्तिमार्ग में भी, भक्तिमार्ग की अन्य साधनाओं से भगवन्नाम का जप सरलतम है। भगवन्नाम कोई अस्वस्थ, रोगी, वृद्ध अथवा विकलांग व्यक्ति भी सुगमता से ले सकता है। ये सभी प्रकार के व्यक्ति प्रपंच का अथवा अन्य किसी योग-मार्ग का कोई साधन नहीं कर सकते। किन्तु वे सुविधाजनक आसन या कुर्सी पर बैठकर, हाथ में छोटी माला लेकर, 'हरि, हरि, हरि' अथवा 'राम, राम, राम' का जप कर सकते हैं। अरे, कोई काम में सबसे व्यस्त रहने वाला आदमी भी अपने व्यवसाय पर आने-जाने के समय जप कर सकता है। मुम्बई में रहने वाले लोगों को, थाना आदि दूर स्थानों से आने वाले लोगों को गुरुदेव कहा करते थे कि वे इलेक्ट्रिक लोकल ट्रेन में आते-जाते समय निद्रा का अभिनय कर, भगवन्नाम का जप कर सकते हैं। अपना स्टेशन आने पर्यंत उन्हें ताश खेलना आवश्यक नहीं है।

इसलिये हमें अपने खाली समय का सदा सदुपयोग करते हुए जप करना चाहिये। किसी ने कहा है कि पहले दिल्ली में एक चालीस-बयालीस की आयु के वकील रहते थे। वे गुरुदेव के सबसे पुराने और सच्चे भक्तों में से एक थे। उनका नाम था श्री द्वारकानाथ जिंघन। वे ब्राह्मण थे। वे सदा मन्त्र-लेखन करते थे। उनके पास एक पॉकेट-आकार की छोटी डायरी और उसके जितनी ही सूचनाओं की एक छोटी पुस्तिका सदा रहती थी। इन दोनों चीजों को वे कदापि भूलते नहीं थे। कोर्ट में जाने या वहाँ से वापस आने के समय में बस स्टैन्ड पर बस की प्रतिक्षा करते समय कतार में खड़े-खड़े वे मन्त्र-लेखन की डायरी निकाल कर मन्त्र-लेखन करते थे। यदि इस प्रकार आप सब करेंगे तो वह ऐसी योग-साधना होगी जो किसी भी जगह, किसी भी समय कर सकते हैं। जो निष्काम भाव से भक्ति अर्थात् मुक्ति हेतु जप करते हैं, उनके लिये कोई नियम, देश, काल के बन्धन नहीं हैं।

जप-साधना के क्या लाभ हैं? शास्त्रों, सन्त-महात्माओं, ग्रन्थों और ऋषि-मुनियों का कहना है कि भगवन्नाम में इतनी शक्ति है कि वह मानव को भगवान् बना देता है।

"उलटा नाम जपत जग जाना, बालमीकि भये ब्रह्म समाना।"

भले ही भगवन्नाम उलटा था तथापि उस लुटेरे, जंगली, आदिवासी, क्रूर, अशिक्षित और असभ्य रत्नाकर का उद्धार हुआ। उसे नीति-अनीति अथवा धर्म का अस्तित्व भी ज्ञात नहीं था, फिर पाप-पुण्य का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। वह एक ही बात जानता था, लोगों के मस्तक काटना और उन लोगों के पास जो भी हो, उसे लूटना। वह अन्य पशु-पक्षियों को भी मारता था। तो हिंसा, हत्या उसके सहज उद्योग थे। अतः जब उसे भोजन हेतु कोई पशु-पक्षी नहीं मिलते थे, तब वह मुसाफिरों और यात्रियों को लूटता था। वही उसका व्यवसाय था। किन्तु जब भगवन्नाम की शक्ति ने उसे पकड़ लिया, आकृष्ट कर लिया तो उसका हिंसक, क्रूर स्वभाव लुप्त हो गया। उसके सारे क्रूर कर्म, अनीति और पाप-कर्म नष्ट हो गये। उसके पास, उसके कर्मों में केवल मात्र भगवन्नाम को जपना ही रह गया। वह उस पर दृढ़ रहा। वह भगवन्नाम का जप करता रहा, पुनः-पुनः और सर्वदा करता रहा और अन्ततः उसे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई।

भगवन्नाम के सामर्थ्य का दूसरा उदाहरण है-छत्रपति श्री शिवाजी महाराज के सद्गुरु का, जिन्होंने केवल मात्र राम-नाम के जप से सिद्धि प्राप्त की। श्री समर्थ रामदास ने अन्य किसी भी प्रकार की साधना नहीं की। वेदान्त पढ़ने का और अन्य किसी मार्ग की साधना करने का उन्हें समय नहीं था। कारण यह था कि उस समय वे सोलह वर्ष की आयु के थे। उन्होंने संस्कृत भाषा के कोई नियम पढ़े होंगे। किन्तु उन्होंने कभी कोई महामंडलेश्वर, वेदान्ताचार्य अथवा गुरु के चरणों में बैठकर आत्मबोध, तत्त्वबोध, विवेक-चूड़ामणि, जीवन्मुक्ति, पञ्चदशी आदि का स्वाध्याय नहीं किया था। उन्हें इस प्रकार का कोई अवसर ही नहीं मिला। सत्रह वर्ष की आयु में उन्होंने घर से पलायन किया। वे श्री त्र्यंबकेश्वर के पास भ्रमण करते रहे। पश्चात् एक साधु ने उन्हें रास्ते में देखा और पूछा कि वे रास्ते पर क्या कर रहे थे। साधु को उन्होंने भगवान् से मिलने की अपनी तीव्र इच्छा व्यक्त की। साधु ने उन्हें प्रथम सेवा और फिर नाम-जप करने को कहा। श्री समर्थ रामदास ने नाम को पकड़कर अपनी साधना का आरम्भ किया। नर्मदा नदी के पवित्र जल में खड़े रहकर उन्होंने जप-साधना की और उन्हें ईश्वर-साक्षात्कार हुआ।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण भी है। एक सारस्वत कुटुम्ब में, आठ-नौ लड़कों में से विट्ठल राव नाम का एक छोटी आयु का लड़का था। उसे अंग्रेजी-साहित्य में, नाटक में भाग लेने में रुचि थी। काव्य-साहित्य भी उसे बहुत प्रिय था। फिर उसने बी. ए. की। विवाह होने से उसने गृहस्थाश्रम शुरू किया। कपड़े के व्यापार का थोड़ा प्रशिक्षण लिया और व्यापार भी किया। बाद में 'बॉम्बे-मिल' में नौकरी की। संघर्षात्मक क्षेत्र उसे अप्रिय लगने से स्वयं का एक कारखाना शुरू किया। कारखाना नंदुरबार में था। विवाह से उसके एक लड़की भी हुई। पश्चात् उसे चिन्ताओं ने घेर लिया। उसका कारखाना अच्छी तरह से नहीं चलता था। उसके पिताजी ने विठ्ठल राव की चिन्ता देखकर उन्हें श्री राम नाम का उपदेश दिया। शिवाजी के गुरु श्री समर्थ रामदास जो जप करते थे उसी राम-नाम का उपदेश दिया। श्री विट्ठल राव ने राम-नाम जपना प्रारम्भ किया और उसे सतत जपते रहे। वही उनकी साधना थी। वेदान्त आदि उन्होंने पढ़े नहीं थे। श्री स्वामी रामतीर्थ जी का थोड़ा साहित्य पढ़ा था। वे गुरुमहाराज से आयु में लगभग एक या दो साल बड़े थे। श्री विठ्ठल राव को केवल राम-नाम के जप से ईश्वर-साक्षात्कार हुआ। उन्हें श्री समर्थ रामदास जी का अंशावतार कहते हैं। श्री समर्थ रामदास की उन पर बहुत कृपा थी।

इन सब उदाहरणों में हमने देखा कि केवल नाम-जप से भक्तों को भगवत्-साक्षात्कार हुआ। किन्तु हमारी वर्तमान परिस्थिति में हमें समय का अभाव है, हमारी जीवन पद्धति भी ऐसी है कि उसमें योग मार्ग की योग्यता प्राप्त करनी और आचार्य बनने की कोई सम्भावना और अनुकूलता नहीं है। एकमात्र सुलभ मार्ग और पहुँच नाम-जप की है। नाम-जप हेतु किसी वर्ण, धर्म, जाति अथवा योग्यता की आवश्यकता नहीं है। भक्त शबरी ने भगवन्नाम के जप से ईश्वर-साक्षात्कार किया। वह आदिवासी, अनपढ़ थी तथापि उसकी लक्ष्य-सिद्धि में कोई विघ्न नहीं आया। श्री रामचन्द्र जी ने स्वयं आकर उसे दर्शन दिये और उसके जूठे बेर खाये। सन्त तुलसीदास की समग्र रामायण तो राम-नाम की महिमा से परिपूर्ण है।

इस युग में भी श्री पापा रामदास जी ने और पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने बताया कि इस कलियुग में नाम-जप की साधना के अतिरिक्त और कोई साधना नहीं है। यह साधना सबके लिये सम्भव, सरल, सुलभ और अल्पतम प्रयास युक्त है। नाम-जप का एक नियम इस प्रकार का है कि प्रतिदिन एक ही स्थान में, एक ही समय पर, एक ही आसन पर बैठकर जप करना चाहिये। किन्तु यदि इस नियम-पालन हेतु हमारे पास स्थान, समय की सुविधाएँ नहीं हैं, तो इन सुविधाओं के अभाव में भी हम किसी भी स्थान में, किसी भी समय नाम जप कर सकते हैं। फल-प्राप्ति में कोई अन्तर नहीं होगा। यह साधना अत्यन्त प्रभावशाली, कारगर और अमोघ है।

भगवन्नाम की जप-साधना का क्या रहस्य है? यह साधना किस कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है? इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि जप से भगवान् के साथ उसी क्षण जुड़ जाते हैं। भगवान् का हमें तत्काल प्रत्यक्ष सान्निध्य मिलता है। जैसे ही भगवन्नाम लिया कि हमारे मन के अन्य सब विचार दूर हो जाते हैं और भगवान् को हम अपने सम्मुख पाते हैं। इसका क्या कारण है? इसका रहस्य यह है कि भगवन्नाम, भगवान् का ही साक्षात् प्रकट स्वरूप है। सब वैष्णवों का यही अनुभव है। वैष्णव आचार्यों का अनुभव है और इसी अनुभव पर उन्होंने घोषणा की है कि नाम और नामी एक ही तत्व हैं। उन दोनों में न तो भेद है और न ही वे अलग-अलग तत्त्व हैं। उन आचार्यों ने इनकी एकता को सिद्ध किया है। उनके अभेद का आचार्यों ने अनुभव किया है।

भगवन्नाम में एक ऐसी विलक्षणता, विशिष्टता है कि जब हम भगवन्नाम का उच्चारण करते हैं कि हमें भगवान् की प्राप्ति हो तो वे उसी समय इसके लिये स्वयं सज्ज, उद्यत अथवा तैयार होने लगते हैं। कारण, भगवान् अपने भक्तों पर विशेष अनुग्रह कर, किसी जीवात्मा को संसार में भटकते हुए नहीं देख सकते। उस भक्त पर वे विशेष अनुग्रह करते हैं। अपनी अनुकम्पा एवं अनुग्रह से वे स्वयं के 'नाम' द्वारा उस भक्त के जीवन में प्रवेश करते हैं। 'नाम' का रूप धारण कर, वे स्वयं उस भक्त के जीवन में पहुँच जाते हैं। भक्त के कर्णों द्वारा उसके अन्तर में ही नहीं उसके अन्तरतम में, हृदय में स्थान ग्रहण करते हैं। पश्चात् अपनी दिव्यता द्वारा उस भक्त का उद्धार करते हैं। उसकी आत्मचेतना को जागृत करते हैं। उस भक्त के अज्ञान के पर्दे को दूर कर, उसके समस्त पापों को भस्म कर, नाम के प्रताप से उसे साक्षात्कार प्रदान करते हैं। हमारे वेद और वेदान्त ने भी भगवन्नाम के इस मार्मिक रहस्य की पुष्टि की है, इस रहस्य को सिद्ध किया है। वे कहते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व अन्य कोई तत्त्व नहीं था-केवल मात्र असीम, निरपेक्ष, निरंकुश परम तत्त्व था। वह तत्त्व, ब्रह्मतत्त्व था। वह एकमेव अद्वितीय ब्रह्म था। उसके सिवा अन्य कुछ था ही नहीं। उस 'एक' ने 'अनेक' बनने का संकल्प किया और वह 'अनेक' बना।

वह 'एक' से 'अनेक' कैसे बना? सबसे प्रथम, जो परात्तत्त्व अव्यक्त, अप्रकट और सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व था, उसका कोई नाम-रूप नहीं था। वह सर्वप्रथम एक स्पन्दन के रूप में प्रकट हुआ, किन्तु वह निश्चल था। जो परात्पर परब्रह्म तत्त्व है उसमें गति नहीं है, किन्तु उसमें जब 'एक' से 'अनेक' होने का संकल्प उठा, उसमें शक्ति का आविर्भाव हुआ। अचिन्त्य, दिव्य शक्ति, परा शक्ति, आदि शक्ति का आविर्भाव हुआ। जब उसमें आद्य शक्ति का आविर्भाव हुआ तब उसमें अकस्मात् 'चल' प्रकट हुआ। वह 'चल' एक आद्य स्पन्दन के रूप में, सृष्ट्यात्मक रूप में एक अमुक स्थान में प्रकट हुआ। उस आद्य-स्थान को बिन्दु कहते हैं। उस बिन्दु में गति और एक 'दबाव' आया। वह 'अव्यक्त' जब 'व्यक्त' हुआ तो उसमें से एक ब्रह्मांडकीय, सृष्ट्यात्मक, रहस्यपूर्ण ध्वनि आयी, एक शब्द उत्पन्न हुआ। वह शब्द क्या है? वह 'प्रणव' अर्थात् 'ॐ' - शब्द था। जब कुछ भी नहीं था, सृष्टि भी नहीं थी, तब यह 'शब्द' प्रकट हुआ। ब्रह्मांड में सूर्य, चन्द्र, तारे भी नहीं थे, तब उस प्रगाढ़ शान्ति में, उस गहन निश्चलता में, उस प्रशान्त परब्रह्म में वह 'शब्द' प्रकट हुआ। उसे ही कहते हैं, 'ॐकार', 'प्रणव'।

'पतंजलि योगदर्शन' के अनुसार, यदि आप परब्रह्म पर ध्यान करना, उस पर मन एकाग्र करना चाहते हैं तो 'प्रणव' 'ॐकार' के जप द्वारा परब्रह्म की ओर, ईश्वर की ओर अपना मन प्रवाहित कर सकते हैं: 'तस्य वाचक प्रणवः।' ईश्वर की संज्ञा-उनका नाम प्रणव है। 'प्रणव' का स्थान मात्र किसी शब्द की तरह नहीं है। यह तो साक्षात् 'ब्रह्म' का

प्रतीक है, अपितु ब्रह्म ही है। 'प्रणव' ब्रह्म-तत्त्व के साथ, सत्य के साथ एकता का सूचक है। वेदान्त ने कहा है कि प्रणव 'शब्दब्रह्म' है अर्थात् ब्रह्म का नाम, ब्रह्म की पहचान प्रणव ही है। उसे 'नादब्रह्म' भी कहते हैं। 'नाद' के रूप में यह परब्रह्म ही है। तभी तो सिक्ख लोगों ने और उनके आदिगुरु ने कहा, 'एक ओंकार सतनाम।'

ॐकारं विन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः ।।

भक्तों के हृदय में नामरूप से भगवान् आकर बैठ जाते हैं। कारण नाम ही ईश्वर, प्रेम और सत्य है, और ईश्वर, प्रेम और सत्य का ही नाम है। आध्यात्मिक अर्थ में, योगशास्त्र में नाम ही भगवान् है। में नाम के रूप में आते हैं और हम नाम और भगवान् करते हैं। हम नाम का, भगवान् की शक्ति का उपयोग भगवान् हमारे हृदय दोनों को स्वीकार करते हैं। एकमात्र भगवान् की शक्ति ही माया को जीत सकती है। अपनी शक्ति से हम उसे जीत नहीं सकते।

जब हम मन्त्रदीक्षा प्राप्त कर जप का आरम्भ करते हैं तो जप की न्यूनतम संख्या निश्चित करनी चाहिये। 'एकादश' माला तो करनी ही चाहिये और यह नहीं भूलना चाहिये कि यह तो कम से कम संख्या है। जप संख्या में वृद्धि करने का प्रयास करना चाहिये। 'अधिकस्य अधिकं फलम्।' किसी व्यापारी को अधिक धन कमाने की कोई प्रेरणा देनी आवश्यक है क्या? अपनी आय को पर्याप्त और काफी समझकर वह शान्त बैठता है क्या? वह तो आमदनी किस तरह बढ़े, यही सोचकर मेहनत करता है। हमें भी यही भावना रखकर अधिकाधिक जप करना चाहिये ! जप-साधना को सफल करने के लिए हमें नियमितता, एक ही स्थान, एक ही आसन में बैठने का ध्यान रखना चाहिये। इस प्रकार करने से दिन के २४ घण्टे हमारी साधना का क्रम बन जाता है। प्रतिदिन वह निश्चित समय होते ही व्यक्ति स्वयं ही अन्तर्मुखी हो जाता है। जप करने की भावना उसमें अपने आप आ जाती है। उस समय सत्त्व मन में आ जाता है। जब हम मन में नाम रटते हैं तो प्रपञ्च कुछ नहीं रहता, केवल प्रभु हैं और उनके चरणों में हम बैठे हैं। जब नाम रटते हैं तब प्रभु हमारे सम्मुख उपस्थित हैं, हम प्रभु को बुला रहे हैं, इस प्रकार का भाव आना चाहिये। जिस तरह किसी व्यक्ति को बुलाना हो तो उसका नाम ले कर उसे पुकारते हैं, तो उसका ध्यान आकर्षित होता है और वह हमारी ओर आ जाता है। जप का यही प्रभाव है। जप प्रभु को पुकारना है और तुरन्त प्रभु का अस्तित्व हमारे सामने आ जाता है। प्रभु का नाम इस प्रकार की दिव्य शक्ति रखता है। प्रभु का लिखित जप भी उसी के समान प्रभावशाली है। लिखित जप में हाथ, आँखें और मन भी साधना में एकाग्र होते हैं, यह धारणा और ध्यान का प्रथम सोपान है। लिखित जप द्वारा धारणा का अभ्यास हो जाता है। जो हाथ में माला लेकर दिन में एक-दो बार जप करते हैं वह पर्याप्त नहीं है। अन्य लोगों के साथ व्यवहार करते समय में भी निरन्तर मानसिक जप अटूट रूप से चलना चाहिये, जप सदैव होते रहना चाहिये।

हमें अपने इष्टदेव पर निष्ठा रखनी चाहिये। भगवान् के अन्य स्वरूपों को भी इष्ट का स्वरूप मानना चाहिये और इष्ट को केवल नाम और स्वरूप में सीमित नहीं रखना चाहिये। उनका जो साकार-सगुण स्वरूप है, वही निर्गुण-निराकार और सर्वव्यापी हैं। हमारे इष्टदेव सर्वान्तर्यामी हैं। भगवान् शिव के भक्त को 'सर्वं शिवमयं जगत्', श्री रामभक्त को **'सर्वं राममयं जगत्',** श्री कृष्णभक्त को **'सर्वं कृष्णमयं जगत्'**, इसी प्रकार भगवती देवी के भक्त को **'सर्वं भगवतीमयं जगत्'** -ऐसा सोचकर जीवन-यापन करना चहिये। इस प्रकार जप करते समय भगवत्-प्रतीति के लिये जो विपरीत, प्रतिकूल तत्त्व हैं उन्हें अपने जीवन से निकाल देना चाहिये।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।

अपवित्र कामना, क्रोध और लोभ अभिशाप हैं। साधना की सफलता हेतु इन्हें बाहर निकालकर फेंक देना चाहिये। साथ-साथ सत्य परायणता को अपनाना चाहिये। सत्य भगवान् का स्वरूप है। हम चाहे कितना भी जप करें

किन्तु यदि हमारा जीवन असत्य से प्रचुर हो तो जप में सफलता प्राप्त होनी कठिन है। हमारी साधना बैलगाड़ी जैसी धीरे-धीरे प्रगति करेगी। काया-वाचा-मनसा हमारी दृष्टि में, भाव में, वाणी और वर्तन में पवित्रता होनी चाहिये। सरस्वती की कृपा से जिस जिह्वा से हम भगवन्नाम और मन्त्र का जप करते हैं, उसके द्वारा वाणी से हमें किसी को भी दुःखी नहीं करना चाहिये। किसी के प्रति अपमानभरे, कटु, क्रूर, क्रोधपूर्ण, घृणा से भरे वचन नहीं कहने चाहियें। जिस जिह्वा से भगवान् के स्वरूप भगवन्नाम को जपते हैं तो उसी से हम अपवित्र कार्य करें, आसुरी चेष्टा करें तब यह अपराध है। हमें मृदु, दयामय, क्षमाशील, स्नेहपूर्ण, सत्य, सदाचार और धर्मनिष्ठा युक्त वचनों का उच्चारण करना चाहिये। पवित्र आचरण और ऊँचा चरित्र होना चाहिये। ये सब नाम-जप की सफल साधना में सहयोगी होते हैं।

परम पिता परमेश्वर और सद्गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के आशीर्वाद आप सब पर हों।

२.दिव्यत्व की प्राप्ति

उज्ज्वल आत्मस्वरूप, परम पिता की दिव्य अमर सन्तान,

परम पिता परमेश्वर को कोटिशः प्रणाम।

परम पूज्य गुरुदेव की स्वामी शिवानन्द जी महाराज को साष्टांग प्रणाम। देहरादून की एक छोटी संस्था है, उसमें विविध धर्म-सम्मेलनों में मुझे कई बार आमंत्रित किया जाता है। इसी प्रकार देहरादून से मसूरी जाने के रास्ते में 'क्रिश्चियन स्टडी सेन्टर' नाम की संस्था में मुझे आमंत्रित किया था। वहाँ चार-पाँच धर्मों का एक प्रेम-मिलन हुआ था। सिख, ईसाई, यहूदी, इसलाम और बौद्ध धर्म के सन्त-महापुरुष और विद्वान् थे। हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाले दो व्यक्ति भी थे। सिख धर्म के प्रतिनिधि, महान् धार्मिक सरदार जी ने गुरु वाणी सुनायी। उन्होंने कहा, **"हर नाम जप, निर्मल कारज कर।"** पूर्ण धर्म का एक ही सार है, ईश्वर को कदापि न भूलो और सदाचार करो। नाम जप करो और तुम्हारा हर कार्य निर्मल-पवित्र हो। आपके सब कर्म विशुद्ध और निष्कलंक हों। साथ-साथ यह भी कहा कि भगवान् को कभी भूलना नहीं, उनका सदा स्मरण रहे। अपने मन से उनके साथ सदैव जुड़े रहो।

अन्य एक सन्त ने कहा कि ईश्वर का स्मरण ही जीवन है, उनकी विस्मृति मृत्यु है। जिस क्षण हम उन्हें भूलते हैं, हम मृतावस्था में हैं। भगवान् की विस्मृति में हम भले ही शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक रूप से जीवित हों, हमारा शरीर भले ही हिल-जुल रहा हो, सक्रिय हो; किन्तु आध्यात्मिक रूप से हमारा जीवन रुक जाता है, यह जीवन का अन्त ही होता है। वह जीवित मृत्यु है। और यही धर्म का प्राण, सच्चा स्वरूप है। हम ने धर्म के बाह्य स्वरूप को याद रखा किन्तु धर्मों के वैविध्य, भिन्नता क्लेश-कलह का कारण बन गये। धर्म के आन्तरिक स्वरूप को हमने विस्मृत कर दिया।

किसी ने कहा है कि भगवान् ने दुनिया का सर्जन किया, मानव ने राष्ट्रों का, देशों का सर्जन किया। इसी तरह भगवान् ने शाश्वत, व्यापक और सार्वत्रिक धर्म का सर्जन किया, जिससे मानव सृष्टि-ब्रह्मांड के साथ अपनी एकता, सहजता को पुनःस्थापित करके, अद्वैत की प्राप्ति करके ईश्वर के पास पुनः पहुँच जाये। जीव ईश्वर का अंश होकर अविनाशी, चेतन-प्रकाश और सहज सुखसार है। अतः हमारे परम पिता का गौरव प्राप्त करना, यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। पिता के वैभव पर हर पुत्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। हमें अपने जीवन में इसे सदा याद रख कर, अपना व्यवहार करना चाहिये।

अपनी चेतना में हमें इस बात की स्मृति रखनी है कि हम तो दिव्य हैं। हम भगवान् की सन्तान हैं तो हम में भगवान् की दिव्यता सहज है। हमारा वास्तविक व्यक्तित्व तो दिव्य है, कारण, हम उनके हैं। इस ज्ञान में रहकर कोई भी व्यवहार करना चाहिये। हमारे अन्दर से जो भाव, विचार, वाणी, कार्य निकलें, वे सब दिव्य होने चाहियें। वे सब परिपूर्ण, भगवत्-तुल्य होंगे यदि हमें स्मरण रहे कि हम भगवान् की सन्तान हैं, और दिव्य सन्तान हैं। हम यदि सतर्कता रखें कि हम परिपूर्ण हैं तो हमारा सब व्यवहार सहज रूप से दिव्य होगा। कारण यह है कि सृष्टि में जो कुछ है, वह ईश्वर स्वयं है। उन्होंने स्वयं से ही सारी सृष्टि की रचना की तथा अपनी आत्मा, अपना ईश्वरीय अंश, अपनी चेतना सब में रखी। मानव मात्र में इसका विशेष महत्त्व, अर्थ है क्योंकि मानव में बुद्धि, ज्ञान, समझ, संवेदना, प्रज्ञा हैं।

अतः हम सब में भगवान् की दिव्यता की चिनगारी है, उनका चैतन्य है। यदि इस महानतम, अर्थपूर्ण सत्य की ओर हम ध्यान न दें तो हम स्वयं अपने ही देह, मन, बुद्धि और अहंकार के संकुचित और निरर्थक व्यक्तित्व में उलझ जायेंगे, उनमें ही सीमित रहेंगे। फलतः मानव समाज में कटुता और संघर्ष फैलेंगे। यदि अपनी वास्तविकता का होश रखकर हम अपने सारे जीवन और व्यवहार में दिव्यता का प्राकट्य काया, वाचा, मनसा करेंगे तो बाह्य परिस्थितियाँ और समाज शान्तिपूर्ण होंगे। अन्ततोगत्वा, हमारे मन के स्वार्थ, अहंकार और संकुचितता ही बाह्य संघर्ष उत्पन्न करते हैं। हमारे आचार-विचार यदि विषम न होकर, सुन्दर होंगे तो वे सुन्दरता ही प्रकट करेंगे। इसलिये ईश्वर का सामीप्य, सान्निध्य रखो। सब सांसारिक, स्वार्थी, भौतिक इच्छाएँ, विचार, कटु भाषण से दूर रहकर ईश्वर की संचेतना में रहो। हमारी स्मृति में सदैव रहे कि ईश्वर ने हमें अपने विरोधी स्वरूप में नहीं, अपितु अपने समान बनाया है। जो परम सत्ता सर्वोपरि परमात्मा में है, वही हम सब में हैं।

ईश्वर की जो इच्छा है उसके अनुरूप हमें अपना जीवन बनाना चाहिये। हमारा जीवन समाज के लिये एक आशीर्वाद होना चाहिये। वह तब होगा जब सब के साथ शान्ति, प्रेम और सामरस्यपूर्ण व्यवहार करेंगे। भगवान् की इच्छा क्या है? उनकी इच्छा को व्यक्त करने के लिये सभी धर्मों के समस्त ग्रंथ उपस्थित हैं, रचे गये हैं। बाइबल, वेद, वेदान्त, ग्रन्थ साहिब, कुरान-सब ईश्वर की हमसे जो अपेक्षा है वह प्रकट करते हैं। सर्व प्रथम नमाज़ पढ़ते हैं तब मानव कहता है, "हे प्रभु, हे अल्ला, आप दयालु हैं। हमें उस दिशा में ले जाओ, जिससे आप प्रसन्न हों। हमें गलत राह में नहीं ले जाना कि जिससे आप हमसे रुष्ट, अप्रसन्न हों।" सब धर्मों में ईश्वर से यही प्रार्थना की जाती है।

परन्तु, हम क्या करते हैं? हम उस प्रकार का आचरण नहीं करते और परिणामस्वरूप समाज में अशान्त, परस्पर विरोधी, कलहपूर्ण, संघर्षात्मक और असहमतिपूर्ण परिस्थिति का सर्जन होता है। वस्तुतः सत्य तो यह है कि हमारी धर्म में श्रद्धा सच्ची नहीं है। हमारी धर्म पर श्रद्धा केवल बाह्य, शाब्दिक, दिखावे की, हमारी महानता प्रकट करने वाली होती है। इसे "Lip Loyalty" केवल वाणी में प्रकट होने वाली निष्ठा कहते हैं। कभी-कभी आस्तिक से नास्तिक व्यक्ति अच्छा होता है। कारण, नास्तिक मानव कोई दम्भ नहीं करता वह ईश्वर से छल-कपट नहीं करता। आस्तिक मानव समाज में आत्मश्लाघा, शेखी या आत्मस्तुति करता है कि वह तो मन्दिर में जाता है, अपने धर्मस्थान में जाकर प्रार्थना करता है। परन्तु आस्तिक मानव अपने दैनिक जीवन में इस प्रकार का व्यवहार करता है कि जैसे भगवान् का अस्तित्व है ही नहीं। हम जानते हैं कि प्रतिपल, प्रतिक्षण हम जो भी व्यवहार, आचरण करते हैं, उस

समय भगवान् हमारे साथ उपस्थित हैं ही। हम जो भी कार्य करेंगे उस प्रत्येक कार्य का ज्ञान ईश्वर को होता ही है। इतना ही नहीं हमारे अन्तरात्मा में परमात्मा विराजमान है, यह भी हम जानते हैं। हमारे प्रत्येक विचार का उसे ज्ञान है। अत: हमें सोचना चाहिये कि जहाँ परमात्मा का वास है वहाँ कोई अनुचित विचार कैसे प्रवेश कर सकता है। हमें भगवान् की अप्रसन्नता का भय, चिंता होने चाहिये। भगवान् की उपस्थिति के पवित्र स्थान में हमें अनुचित विचार को मन से शीघ्र ही बाहर निकालना चाहिये। हमें इस प्रकार का जीवन जीना चाहिये जो समाज में प्रेम, सद्भावना, शान्ति और सुसंवादिता का प्रसार करे।

अतः धर्म के सच्चे स्वरूप, धर्म की सच्ची आत्मा का आचरण ईश्वर के उज्ज्वल वैभव की ओर ले जायेंगे तथा उसके विपरीत, अनुचित जो भी आचार-विचार होंगे उनको नष्ट करेंगे। उस मानव के सब कर्म भगवान् की दृष्टि में उचित होंगे। भगवान् उन कर्मों को पसंद करेंगे। अतः धर्म के सच्चे स्वरूप का आचरण, धर्म के विपरीत आचरण से उत्पन्न होने वाली सब समस्याओं को हल करेगा, सुलझायेगा, निराकरण करेगा। आप इस प्रकार धर्म के सच्चे स्वरूप का आचरण करना।

एक सूचना एवं प्रस्ताव है। गुरुदेव के इस पवित्र समाधि-मन्दिर की दीवारों पर जो सुन्दर, चुनी हुई सद्वाणी हैं, उन्हें अपनी नोटबुक में नोट कर लेना। कारण, श्रवण की हुई सद्वाणी का विस्मरण हो जाता है। एक दूसरी सूचना और भी है। कुछ समय पूर्व फरवरी माह के दिनांक १८ से दिनांक २८ पर्यंत ओडिशा के कटक शहर में, एक सप्ताह पर्यंत साधना शिविर और परिषद का संयुक्त आध्यात्मिक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ था। उसमें देश के विविध राज्यों की शाखाओं के भक्तगण और प्रतिनिधि उपस्थित थे। लगभग हरेक शाखा ने ज्ञान प्रसाद का वितरण किया। तमिलनाडु के "देवी की नगरी" के नाम से मदुराई शाखा ने पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के उपदेशों की एक पुस्तिका और एक चौपन्ना वितरित किये। चौपन्ने में गुरुदेव का 'साधना-तत्त्व' है। उसमें भी इसी बात को महत्त्व दिया गया था कि विश्व में शान्ति स्थापना करने वाले और शान्तिपूर्ण परिस्थिति लाने वाले लोग धन्य हैं।

अतः धर्म के सच्चे, आन्तरिक स्वरूप का पालन ही मानव-आत्मा को सांत्वना दे सकता है तथा मानव-समाज में शान्ति, सद्भाव और सुसंवादिता ला सकता है। धर्म की बाह्य रूपरेखा, धर्म की औपचारिकता में, बाह्य रूप में, आध्यात्मिकता की आन्तरिक सावधानी, चिन्ता, दायित्व और सुरक्षा भी बसी हुई है। यह आध्यात्मिकता सब धर्मों में समान है। इस आध्यात्मिकता का धर्म में यदि अभाव हो तो वह धर्म, धर्म नहीं रहता। मानव की आध्यात्मिकता और धार्मिकता का पालन तब ही होता है, जब वह अपने सच्चे स्थान, अपने परम पिता के घर पुनः पहुँचता है। मानव में सतत जागृति, सतर्कता होनी चाहिये कि परमात्मा के विराट, वैश्विक, सृष्ट्यात्मक, ब्रह्मांडीय रूप के साथ उसका आन्तरिक सम्बंध है। विश्व के लौकिक, बाह्य आविर्भाव अथवा रूप के साथ उसका कोई स्थायी, आन्तरिक और सच्चा नाता नहीं है, इसे याद रखकर जीवन-व्यवहार करना चाहिये। सर्वोपरि, परम सत्ता किसी भी धर्म की उत्पत्ति से पूर्व अस्तित्व में है और उसका ही एकमात्र अस्तित्व है। बाह्य जगत्, मानव, मानव- सम्बंध, जगत् की अन्य चीजों का अस्तित्व अस्थायी, परिवर्तनशील और मायावी है। ईश्वर का अस्तित्व अनादि, अनन्त है। किसी भी धर्म, धर्मोपदेशक, धर्मग्रन्थ, धर्मस्थान की उत्पत्ति के पूर्व से ईश्वर हैं।

और यही अनादि, अनन्त ईश्वर हमारा शाश्वत साथी है। जब तक हम ईश्वर की दिशा की ओर गति नहीं करते और उसे प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते, तब तक हम धार्मिक नहीं हैं। जब हमारी प्रवृत्तियाँ, व्यवहार भगवदोन्मुखी होते हैं, तथा हम ईश्वर की ओर अधिक गति करते हैं, हम ईश्वर जैसे बनना आरम्भ कर देते हैं। इस संसार में हम तो पथिक हैं, यात्री हैं। हमें हमारे मूल निवास, ईश्वर के पास पहुँचना है।

ईश्वर हमें धर्म की आत्मा, धर्म के प्राण, आध्यात्मिकता प्रदान करें, हमारा हरेक कर्म उसके उत्तरोत्तर समीप ले जाये और हम वर्तमान और भविष्य के विश्व के सद्भाव, सुसंवादिता और कल्याण में अपना योगदान दें।

३. आत्मज्ञान की साधना

उज्ज्वल आत्मन्,

यह प्रातःकाल की समाप्ति और मध्याह्न काल के आरम्भ के इन दो काल की सन्धि का समय है। यह सन्धि-काल अति उपयुक्त एवं पवित्र मुहूर्त है। ऐसे मुहूर्त में हमें अन्य सब कार्य, हर प्रवृत्ति को त्याग कर, अपने मन के तार भगवान् के साथ जोड़ने चाहियें। एकाग्र चित्त से विश्वात्मा का ध्यान करना चाहिये। भक्तिभाव से भजन करना चाहिये। भगवान् का विचार, ब्रह्म-विचार करना चाहिये। ध्यान, भगवद्-चिंतन, तत्त्व विचार अर्थात् साधना हेतु यह अत्यन्त उचित सन्धि-काल है। सत्त्व प्रधान इस सन्धि-काल में, प्रकृति में एक ऐसा विचित्र परिवर्तन होता है कि हमारा बहिर्मुखी मन स्वयं ही अन्तर्मुखी हो जाता है। हमारी चित्तवृत्तियाँ कुछ समय के लिये प्रशान्त हो जाती हैं। यह सन्धि-काल का प्रभाव है।

सन्धि-काल चार हैं। रात्रि की समाप्ति का और प्रातःकाल के आरम्भ का सन्धि-काल प्रथम है। पूर्वाह्न और अपराह्न की सन्धि का द्वितीय काल है। सायंकालीन सन्धि तृतीय है और वह तब शुरू होती है, जब सायंकाल की

विदा होती है और रात्रि का आगमन होता है। यह दिन-रात की सन्धि है। इसके पश्चात् अंतिम, महानिशा सन्धि रात्रि के बारह बजे होती है। ये चारों सन्धि-काल अंतरंग साधना हेतु अति सहायक हैं। ये ऐसी विशेष अवस्थाएँ हैं जिन्हें योगियों ने विशिष्ट दृष्टिकोण से सोचा है, देखा है। उन्होंने देखा कि इन अवस्थाओं में प्राण एक ही मात्रा में, सम मात्रा में इडा और पिंगला नाड़ियों में संचार करता है। सुषुम्ना की ओर उनकी सहज गति होती है। मन प्रशान्त होता है और चित्त-वृत्तियों का शमन होता है। अन्तर्मुखी होने से भगवद्-चिंतन में एकाग्रता सहज होती है। भक्तिभाव स्वयं जागृत होता है। अतः हम सब अभी अल्प समय ध्यान करेंगे। पश्चात् थोड़े विचार परात्पर तत्त्व पर करेंगे, ॐ.....।

परात्पर तत्त्व के विषय में कहा गया है कि कोई उस तक पहुँच नहीं सकता। मन और बुद्धि से वह परे है। इसका कारण यह है कि जब शरीर, मन, बुद्धि और सृष्टि आदि किसी का भी सर्जन नहीं हुआ था, उसके पूर्व से यह तत्त्व अस्तित्व में है। अतः परात्पर तत्त्व सबसे अतीत तत्त्व है। यह असीम, परम और निरपेक्ष तत्त्व है। सापेक्षता की रूपरेखा से इसे समझ नहीं सकते। नाम-रूप-देश-काल की सीमा, सापेक्षता से इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। इस प्रकार का तत्त्व जो सबसे परे, सबसे अतीत है, तो उसके साथ हमारे सम्पर्क का कोई प्रश्न नहीं उठता।

मानव-चेतना, देश और काल में सीमित है। इस सीमा में परात्पर तत्त्व की कल्पना भी नहीं हो सकती। किन्तु यह तत्त्व केवल परे, अतीत ही होकर रहेगा तो मानव-चेतना जो नाम-रूप से बद्ध है तो किसी न किसी • एक पदार्थ पर आधारित ही हमारे विचार सम्पन्न होते हैं। बिना कोई आधार हम विचार-शून्य हो जाते हैं। पर इस परात्पर-तत्त्व को, परमात्म-तत्त्व को, आत्म-तत्त्व से ही जान सकते हैं। जिन्होंने उसका ज्ञान प्राप्त किया और उसे जाना, उन्होंने इसे अत्यंत एकाग्र, दीर्घ और गहन ध्यान की अवस्था में जाना। इस हेतु उन्होंने अपनी चेतना को सूक्ष्मातिसूक्ष्म बनाया। अपने शरीर, मन, बुद्धि और संचेतना से भी परे जा के यह ज्ञान पाया। इस अनुभूति को अपरोक्ष अनुभूति कहते हैं। उन्होंने आत्म-तत्त्व से ही इस अनुभूति की प्राप्ति की।

उदाहरणार्थ, घड़े में भरा हुआ पानी सोपाधिक, मर्यादित और सीमित है। वह 'आप' तत्त्व को नहीं प्राप्त कर सकता। उस पानी को यदि सागर में डाल दिया जाये तो वह निरुपाधिक बनता है। पानी एक ही तत्त्व है। इस तरह अपने जाग्रत और सक्रिय बने निज स्वरूप के द्वारा उन ऋषि-मुनियों ने उस परात्पर-तत्त्व में प्रवेश किया। उस अनुभूति के पश्चात् अनेक तो उस अनुभूति में से बाहर ही नहीं आते, कुछ समय समाधि-अवस्था में रहने के पश्चात् उनके शरीरों का लय हो जाता है। इस संसार में उनका कोई कार्य शेष नहीं रहता। किन्तु कोई-कोई इस अतीत अवस्था में पहुँचकर, आनन्दानुभूति में पहुँचकर, परात्पर तत्त्व अपनी अचिन्त्य इच्छा से कुछ न कुछ दिव्य उद्देश्य से, संसार में लौटकर अपना उद्देश्य पूर्ण करते हैं। किन्तु उनके लिये संसार का नानात्व, भिन्नता, भेदभाव निरर्थक होता है। वे तो सबमें एक अद्वितीय ब्रह्म ही देखते हैं। ईश्वर-साक्षात्कार के पश्चात् वे अनेक में एक (ईश्वर) ही देखते हैं। श्री स्वामी रामतीर्थ ने कहा है कि वृन्दावन में गोपियाँ और विशेष रूप से श्री श्री राधाजी जिधर भी देखती हैं उधर भगवान् श्रीकृष्ण को ही देखती हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं :

"मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।" - गीता ७:७

(हे धनंजय! मुझसे भिन्न कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।)

किसी वस्त्र की जैसे उसकी लम्बाई, चौड़ाई तो है किन्तु उसमें कपास के सिवा अन्य कुछ नहीं है। इसी प्रकार भक्त संसार की सब चीजों में उस परात्पर तत्त्व को, ईश्वर को ही देखता है। पंडित मदनमोहन मालवीय जी ने एक

बहुत सुन्दर पुस्तिका लिखी है, Immanence of God (ईश्वर की सर्वव्यापकता)। पूज्य पंडित मदनमोहन मालवीय जी गायत्री के बहुत बड़े उपासक थे। वे शास्त्रज्ञ और वीतरागी थे। उन्होंने सब शास्त्रों का सार इस पुस्तिका में दे दिया है। हमारे सत्य सनातन वैदिक धर्म की केन्द्रीय अनुभूति, केन्द्रीय दर्शन उन्होंने इस पुस्तिका में कराये हैं। उन्होंने लिखा है जो भी हम देखते हैं वह पूर्ण अनन्तकोटि ब्रह्मांड, एक ईश्वर-तत्त्व में ओत-प्रोत है। कण-कण में ईश्वर समाया है। हमारे अन्दर वही ईश्वर-तत्त्व है, हमारा मन, चित्त, बुद्धि, स्मृति, सब कुछ वही है। श्री कृष्ण भगवान् भी अर्जुन को यही सत्य कहते हैं :

"अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।"
- गीता १०:२०

(हे अर्जुन! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ)

इसी प्रकार ब्रह्म विषयक चर्चा करने वाले कुछ जिज्ञासु आपस में कहते हैं :

“एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।"

- श्वेताश्वतरोपनिषद् ६:११

(एक ही देव सब प्राणियों में छिपा हुआ, सर्वव्यापी, समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है, सबके कर्मों का अधिष्ठाता, चेतनस्वरूप और सबको चेतना प्रदान करनेवाला, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत भी है।)

ईश्वर ही हमारा तत्त्व होकर हममें बसा है, समाया है। वही हमारा केन्द्रीय तत्त्व है। वही नित्य सत्ता, नित्य आनन्द, नित्य शान्ति बनकर विराजमान है। केवल मानव नहीं, संसार की हर एक वस्तु, शरीर, प्राणीमात्र के, ईश्वर ही अंतर्यामी हैं।

भगवान् हैं कि नहीं, कैसे हैं, यह प्रश्न नहीं है। भगवान् हैं, अवश्यमेव हैं। किन्तु उनकी प्राप्ति हेतु हम अपने विचारों, अपनी कल्पनानुसार उनकी एक धारणा, उनका एक प्रतिरूप सोच के साधना करेंगे तो सम्भव है कि वह प्राप्त न हों। हमारे पूर्वकल्पित स्वरूप की उपासना में कुछ कमी हो सकती है। किन्तु हम अपने पूर्वाग्रह और उनके स्वरूप के विचारों को त्यागकर उनकी उपासना करें तो उनकी प्राप्ति की सम्भावना है। यह प्राप्ति हमें ईश्वर के अनेक रूपों की, सर्वव्यापक स्वरूप की उपासना करके होती है। सगुण-साकार रूप में, निर्गुण निराकार रूप में, सगुण-निराकार रूप में और अन्त में अपने शुद्ध चैतन्य रूप में उनकी अनुभूति कर सकते हैं।

यह अनुभूति हमें सारभूत तत्त्व के रूप में, ज्ञान-स्वरूप में, केवल शुद्ध चैतन्य रूप जो आनन्द-स्वरूप है, इन सबके रूप में हो सकती है। ये आनन्द, शान्ति, चैतन्य ही एक मात्र सत्य है। हमारी शेष प्रवृत्तियाँ तो इस चैतन्य स्वरूप पर आधारित हैं और अस्थायी हैं। हमारा चैतन्य-स्वरूप ही स्थायी है। जिस प्रकार आकाश मंडल में कई प्रकार के बादल आते-जाते हैं किन्तु नील-गगन को कोई बाधा नहीं पहुँचाते, उसी प्रकार ईश्वर को हम किसी नाम-रूप में बद्ध करते हैं, पर वह तो एक अविकारी तत्त्व है। हमारे पूर्वजों ने उसे भगवान् नहीं कहा। उन्होंने उसे नाम देने से ही इन्कार कर दिया। उन्होंने केवल इतना कहा कि उन्होंने दर्शन पाया है, अनुभूति की है। उन्होंने इतना ही कहा, “तत् सत्।" केवल मात्र 'तत्' शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने उसकी इतनी निश्चयात्मक अनुभूति इस प्रकार की जैसे करतल में रखा आँवला हो। उनका अनुभव इतना शुद्ध एवं सुस्पष्ट था !

यह हमारा सौभाग्य है कि ऐसे ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा भारतवर्ष में हुए और उन्होंने आत्म-साक्षात्कार कर के हमें उस अनुभूति के विषय में आश्वस्त किया। यह अनुभूति प्राचीन वेद-वेदान्त के काल से सम्पन्न हो कर अब तक सम्पन्न होती रही है। हमारे संस्कृति-दाता सब दिव्य-द्रष्टा थे। उन्होंने एक ऐसा प्रबंध किया कि यह अनुभूति कदापि नष्ट न हो। और यह प्रबंध सफल हुआ और आज भी सन्त-महात्मा यह अनुभूति करते हैं। जब तक सूर्य-चन्द्रमा आकाश में प्रकाशित रहेंगे तब तक इस अनुभूति की प्राप्ति नष्ट नहीं होगी। मानव कभी भी इससे वंचित न रहे, उन्होंने इसका ऐसा प्रबंध किया। मानव सुगमता से और स्वयं की पहुँच से यह अनुभूति कर सके, ऐसी व्यवस्था की। यह व्यवस्था गुरु-शिष्य परम्परा की है, जो यह अनुभूति जीवंत, सजीव रखती है। ईश्वर हर पीढ़ी में कोई महान् आत्मा जिज्ञासु बनाकर भेजता है जो ऐसा दृढ़ निश्चयी होता है कि वह उसी जन्म में ईश्वर-साक्षात्कार करता है।

जिन्होंने ईश्वर-साक्षात्कार किया, उन्होंने आत्म-साक्षात्कार की सब शर्तें स्वीकार लीं। सब आवश्यक परिस्थितियों को पूर्ण करने में वे सक्षम थे। इस प्रकार भारत के कोने-कोने में, हर दिशा में, हर पीढ़ी में इस अनुभूति को पुष्ट कर, इस सिद्धि, सफलता को प्रवाहित रखा। भारतवर्ष में यद्यपि हम सब राष्ट्रों से, विश्व बैंक से ऋण माँगते हैं, हमारा बाह्य जीवन अस्त-व्यस्त होने लगा है, तथापि हमारे भारतवर्ष के जन-जीवन को एक नया विस्तार आयाम मिल रहा है। सैकड़ों, हज़ारों की संख्या में दुनिया के अधिकांश राष्ट्रों के लोग भारत आते रहते हैं। वे सब आध्यात्मिक भारत के लिये आते हैं। आध्यात्मिकता का वहाँ अभाव है। ऐश्वर्य की वहाँ कमी नहीं है, आय का गुरुत्तम शिखर-बिंदु उन्होंने पार कर लिया है, तथापि उन लोगों को अशान्ति, दुःख और अतृप्ति है। अब वे हमारे देश में आ रहे हैं। उन्हें लगता है कि भारत में ऐसा कुछ है, जो उनके देश में नहीं है। अतः वे यहाँ आते हैं। यहाँ से वे आध्यात्मिकता प्राप्त करते हैं।

आप सबको ईश्वर-साक्षात्कार हो और इस के लिये परम पिता परमेश्वर और गुरुदेव के आशीर्वाद आप सब पर हों!